International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(2): 25-29

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(2): 25-29
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 06-01-2023
Accepted: 09-02-2023

कविता
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय,
चण्डीगढ, भारत

Corresponding Author:
कविता
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय,
चण्डीगढ, भारत

सौन्दर्य का स्वरूप: भारतीय और पाश्चात्य परम्परा

कविता

सारांश
प्रस्तुत शोध-पत्र, सौन्दर्य तथा उसके स्वरूप पर आधारित है। सौन्दर्य एक ऐसा दिव्य तत्त्व है, जो मनुष्य की चेतना को जन्म से ही आकर्षित करने लगता है। सौन्दर्य चिन्तन में रूचि भेद के कारण सबका अपना अलग-अलग दृष्टिकोण होता है। देश एवं काल के अनुसार सौन्दर्य की परिभाषा बदलती रहती है। कला-जगत् एवं प्राणी-जगत् में उसके बाह्य तथा आन्तरिक रूपों में सौन्दर्य की उद्भावना को लेकर प्राचीन काल से आधुनिक काल तक अनेक चिन्तकों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं। उन मतों का अध्ययन करना इस शोधपत्र का उद्देश्य है।

कूटशब्द: सौन्दर्य, स्वरूप, भारतीय, पाश्चात्य

प्रस्तावना
सौन्दर्य एक स्वयं सुधा है जो हर क्षण परिवर्तित होता रहता है। मानव इस संसार के कण-कण में विद्यमान सौन्दर्य की मनोहारी छवि को प्रसन्नचित्त, विमुग्ध होकर निहारता रहता है। सौन्दर्य एक ऐसा तत्त्व है जो मनुष्य की अन्तः चेतना को जन्म से ही आकर्षित करने लगता है। सौन्दर्य चिन्तन में रूचि भेद के कारण हर व्यक्ति का अपना अलग-अलग दृष्टिकोण होता है। संसार की अपरिमित वस्तुओं, क्रिया व्यापारों में सौन्दर्य का भाव छिपा हुआ है, आवश्यकता है उसे अन्तर्मन की गहराईयों से निहारने की निर्मल हृदय से महसूस करने की।

सौन्दर्य मानवमन की एक सहज प्रवृत्ति है। इसकी अनुभूति प्रत्येक मनुष्य को आकर्षित व आह्लादित करती है। साधारण अर्थ में सौन्दर्य प्रत्यक्षानुभूति का विषय है, जिस वस्तु को देखकर मनुष्य को सुखदानुभूति होती है, वह उसी को सुन्दर कहता है। सौन्दर्य की अनुभूति को आनन्द की अनुभूति के रूप में देखा गया है। इस आनन्द का उदय मनुष्य में कब हुआ, यह कहना कठिन है। शायद यह मनुष्य को जन्मजात प्राप्त है।

प्रत्येक सहृदय किसी सुन्दर वस्तु को देखकर तथा मधुर ध्वनि को सुनकर स्वतः ही उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है। सौन्दर्य में ऐसा आकर्षण है कि मानवेतर प्राणी भी उसकी ओर खींचे चले जाते हैं। यही कारण है कि कोयल बसन्त के आगमन पर मधुर वाणी में कुहू-कुहू की ध्वनि से सम्पूर्ण वातावरण को गुञ्जायमान रखती है तथा तितलियों के रंग-बिरंगे फूलों पर मंडराने का प्रमुख कारण सौन्दर्य ही है। वस्तुतः शास्त्रदृष्ट्या सौन्दर्यशास्त्र नामक नवीन शास्त्र को हम भले ही पाश्चात्य विद्वानों की देन मानते हैं परन्तु भारत में भी वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक सौन्दर्य का विवेचन होता रहा है।

सौन्दर्य के स्वरूप विवेचन के क्रम में बहुत सारे पहलुओं पर विचार किया गया है, यथा क्या सौन्दर्य शरीर का गुण है? क्या उसका सम्बन्ध चेतना से है? क्या वह वस्तुनिष्ठ है या आत्मनिष्ठ? या इन दोनों का सामूहिक रूप है? इन सवालों की गुत्थी को सुलझाने के लिए विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं। सौन्दर्य के वास्तविक स्वरूप तक पहुँचने के लिए हमें उन विद्वानों के विचारों का अध्ययन करना होगा।

भारतीय परम्परा

वैदिक वाङ्मय में सौन्दर्य का स्वरूप – भारतीय वाङ्मय में 'सौन्दर्य' शब्द का प्रयोग यद्यपि अधिक प्राचीन नहीं है, फिर भी सौन्दर्य के पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग भारतीय साहित्य में प्रचुरमात्रा में मिलता है। वैदिक वाङ्मय में सौन्दर्य के पर्याय के रूप में आनन्द, अद्भुत, चारु, मधुर इत्यादि शब्दों का प्रयोग मिलता है। डॉ. फतह सिंह के मतानुसार – "यद्यपि प्रारम्भिक वैदिक साहित्य में सुन्दर, सौन्दर्य आदि शब्दों का प्रयोग भी नहीं हुआ है, परन्तु वहाँ आनन्द, नन्द, मोढ, आमोद, मुद, प्रमुद, प्रिय आदि शब्दों द्वारा जिस अनुभूति की ओर संकेत किया गया है, वह वस्तुतः वही आनन्दानुभूति है जिसे हम सौन्दर्यानुभूति मानते आए हैं"।[1]

वेद में सौन्दर्य के मधुर पक्ष का उषा सूक्त में और उदात्त पक्ष का मरुत्, पुरुष, विष्णु, इन्द्र आदि से सम्बन्ध सूक्तों में अत्यन्त भव्य चित्रण किया गया है। उषा सूक्त में प्रकृति के गोचर सौन्दर्य का अपूर्व उल्लास है।[2] यहाँ पर उषा की एक रमणी से तुलना करके उसके सौन्दर्य को अभिव्यक्त किया गया है। वेदकालीन मनुष्य अग्नि, वायु, सूर्य, वनस्पति इत्यादि में एक दिव्यता की छलक देखता था। उसके लिए सूर्य केवल एक आग का गोला मात्र नहीं था, अपितु वह सम्पूर्ण संसार का मंगलकारी एवं दिव्य शक्ति से सम्पन्न था। वह उस विराट विश्व की सत्ता को दिव्य मानकर उसकी पूजा करता, उसी से उसे आनन्द की अनुभूति होती थी। उसके लिए इसी आनन्द की अनुभूति में सौन्दर्य का प्रकटीकरण होता था। इन सभी प्रसङ्गों में सौन्दर्य के ऐन्द्रिय एवं आध्यात्मिक स्वरूप की स्पष्ट प्रतीति होती है।

उपनिषदों में 'सत्यम्', 'शिवम्' तथा 'सुन्दरम्' की अभिव्यक्ति परमपुरुष के अव्यक्त रूप में अंकित हुई है। उपनिषद् में सुन्दर रूप, रस, प्रकाश एवं आनन्द से एकीकृत होकर उपस्थित हुआ है। 'आनन्द' को ही भारतीय सृष्टि-प्रक्रिया का आदिकरण स्वीकार किया गया है – "आनन्दो ब्रह्मेति विजानात्। आनन्दात् ह्येषं खल्विमानि भूतानि जायन्ते"।[3] अर्थात् आनन्द ही ब्रह्म है। समस्त प्राणी आनन्द से ही उत्पन्न होते हैं। परमात्मा सौन्दर्यातिशय समन्वित परम शक्तिमय है। उस परम सुन्दर शक्ति को आनन्द स्वरूप कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि सुन्दर का लक्ष्य यहाँ आनन्द से है। अतः वैदिक कालीन सौन्दर्य दृष्टि आध्यात्मिक रही है तथा इसमें सौन्दर्य की अनुभूति को आनन्द के रूप में देखा गया है।

रामायण में सौन्दर्य का स्वरूप: संसार में समय हमेशा गतिशील रहता है। समय की इसी गतिशीलता के कारण परिवेश के साथ-साथ मनुष्य के व्यवहार एवं सौन्दर्य-चेतना में भी परिवर्तन आता है। अतः वैदिक कालीन मनुष्य की सौन्दर्य-चेतना तथा रामायणकालीन मनुष्य की सौन्दर्य-चेतना में भी अन्तर है। रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने सौन्दर्य के समस्त रूपों का अत्यन्त मनोयोग के साथ वर्णन किया है। यथा – प्राकृतिक सौन्दर्य, भौतिक सौन्दर्य, मानवीय सौन्दर्य, कलागत सौन्दर्य का अत्यन्त मनोहर रूप में चित्रण किया है। रामायण में सुन्दर शब्द के लिए रमणीय, शोभन, चारु, रम्य इत्यादि पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया है।

रमणीय: गम्यतां भवता शैलश्चित्रकूटः स विश्रुतः। पुण्यश्च रमणीयश्च बहुमूलफलायुतः।।[4]

आप चित्रकूट पर्वत पर जाएँ जो पवित्र, रमणीय और नाना प्रकार की वनस्पतियों से युक्त है। प्राकृतिक चित्रों में सौन्दर्य के जिन तत्त्वों पर बल दिया गया वे हैं – वर्ण वैभव, दीप्ति, निर्मलता, वैचित्र्य, नवीनता तथा सुखस्पर्शिता। यहाँ प्रकृति के केवल मधुर-कोमल रूपों में ही नहीं वरन् परुष और विराट दृश्यों में भी सौन्दर्य का उद्घाटन किया गया है और चाक्षुष सौन्दर्य अथवा रूप के अतिरिक्त गन्ध तथा स्पर्श के प्रभाव की भी स्पष्ट स्वीकृति है। मानवीय सौन्दर्य के अन्तर्गत अंग-सामंजस्य, सुडौल रचना, कान्ति समृद्धि और अलंकार-स्त्रियों के सन्दर्भ में कोमलता तथा विलास, पुरुषों के सन्दर्भ में बलिष्ठता तथा तेजस्विता आदि गुणों का उल्लेख है।[5] अतः रामायण में कवि ने सौन्दर्य के सभी पक्षों का सफलता पूर्वक अंकन किया है।

महाभारत में सौन्दर्य का स्वरूप – रामायण के सदृश महाभारत में भी सौन्दर्य के समस्त तत्त्वों का यथा – प्राकृतिक सौन्दर्य, मानवीय, कलागत आदि सौन्दर्य का अद्भुत वर्णन प्राप्त होता है। महाभारत में सुन्दर के लिए सुरूप, चारु, रम्य, रुचिर, शोभन, मनोहर इत्यादि शब्दों का प्रयोग हुआ है। इन सब के साथ-साथ महाभारत का सौन्दर्य कर्म तथा संघर्ष का सौन्दर्य भी है। इस काल एक ओर कौरवों को भोग की लालसा और ऐश्वर्य का मद है तथा दूसरी तरफ पाण्डवों के पास धर्म, नीति तथा मर्यादा का बन्धन है। कृष्ण ने अपने उपदेश के माध्यम से आत्मा की सत्ता तथा सांसारिक रहस्य का ज्ञान अर्जुन को दिया।

संसार का रहस्य तथा उसकी वास्तविकता का ज्ञान होने के बाद व्यक्ति को सुख-दुःख, मोह-माया, जय-पराजय इत्यादि सब तुच्छ लगने लगते हैं। जीवन में विराट दृष्टि से मोह दूर हो जाता है, आँखें उज्ज्वल और तेज-युक्त, गति में वीरता और हृदय में एक अद्भुत प्रसाद का आविर्भाव होता है। व्यास ने इस गम्भीर अनुभव को शान्ति कहा है।[6] इसी शान्ति के अनुभव के बाद मनुष्य वीतरागी बन जाता है तथा बिना फल की इच्छा किए कर्म करता रहता है, जैसा कि गीता में कहा गया है – "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"। महाभारत में शान्ति के इस अनुभव में सौन्दर्य की अद्भुत छटा प्रस्फुटित होती है।

संस्कृत-साहित्य में सौन्दर्य का स्वरूप: संस्कृत कवियों का सौन्दर्य वर्णन अत्यन्त समृद्ध एवं परिष्कृत है। इन कवियों ने बाह्य रूप सौन्दर्य तथा आन्तरिक लावण्य दोनों पर प्रकाश डाला है। संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य कवि कालिदास मूलतः सौन्दर्य के कवि हुए हैं। कालिदास की मान्यता है कि नैसर्गिकता में ही सच्चा सौन्दर्य निहित है। नैसर्गिक सौन्दर्य अलंकारों की अपेक्षा नहीं रखता। अतः कालिदास की दृष्टि में लौकिक सौन्दर्य भी अलौकिक आध्यात्मिक सौन्दर्य के समान सत्य होकर शिव अथवा सौभाग्य का कारण होता है – "प्रियेषु सौभाग्य फलाहि चारुता"।[7] माघ ने गतिशीलता के द्वारा रूप सौन्दर्य की नित-नवीनता की ओर संकेत करते हुए सौन्दर्य को चिर-नवीन आकर्षण का पर्याय माना है – "क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः"।[8] भवभूति मूलरूप से भावना के कलाकार हैं। रस के विषय में उनका प्रसिद्ध मत – एको रसः करुण एव। वास्तव में भाव-सौन्दर्य की ही व्याख्या करता है। वे मुख्यतः मानवीय भावनाओं को काव्य सौन्दर्य का मूल मानते हैं।

भारतीय काव्यशास्त्र में सौन्दर्य का स्वरूप: भारतीय सौन्दर्यशास्त्र का विकसित रूप भारतीय काव्यशास्त्र में प्राप्त होता है। यद्यपि भारत में सौन्दर्यशास्त्र की एक स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में सत्ता नहीं है, परन्तु फिर भी उसके मूल तत्त्वों और विविध पक्षों का विवेचन एवं विश्लेषण होता रहा है। डॉ. नगेन्द्र का मत है कि रस के भावपक्ष अथवा अनुभूत्यात्मक रूप का निर्वचन रस और ध्वनि-सिद्धान्तों के अन्तर्गत और वस्तुनिष्ठ रूप का रीति तथा अलंकार-सिद्धान्तों में विस्तार से मिलता है। कुन्तक ने अपने वक्रोक्ति सिद्धान्त में उसके उभयनिष्ठ रूप का विषयिविषयगत रूप का विश्लेषण किया है और क्षेमेन्द्र ने औचित्य की प्रतिष्ठा कर कृति के स्तर पर सममिति तथा अनुपात आदि तत्त्वों का तथा विचार के स्तर पर सौन्दर्य के नैतिक पक्ष का उद्घाटन किया है। नाट्यशास्त्र के ग्रन्थों में सौन्दर्य के प्रायोगिक रूप की विवेचना भी अत्यन्त सांगोपांग रीति से की गयी है।[9]

विभिन्न आचार्यों ने सौन्दर्य को लेकर अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं –

वामन – "काव्यं ग्राह्यमलंकारात्। सौन्दर्यमलंकारः"।[10] वामन के अनुसार काव्य का सार तत्त्व है – अलंकार तथा अलंकार का अर्थ है सौन्दर्य अर्थात् सौन्दर्य काव्य का प्राण है।

दण्डी – "काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते"।[11] ऐसा कहकर बाह्य सौन्दर्य को महत्त्व दिया है।

पण्डितराज जगन्नाथ – "रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्"।[12] रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द काव्य है।

इस प्रकार भारतीय परम्परा में सौन्दर्य आनन्ददायक है, आह्लादक है, रमणीय है, नैसर्गिक है तथा अनिर्वचनीय है। कवि की प्रतिभा सौन्दर्य का नित्य नवीन उन्मेष करती रहती है। भारतीय मनीषियों ने बाह्य और आन्तरिक सत्ता के सामञ्जस्य में ही सौन्दर्य का श्रेष्ठ स्वरूप स्वीकार किया है।

पाश्चात्य परम्परा

पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र का आरम्भ: पाश्चात्य वाङ्मय में सौन्दर्य से सम्बन्धित विचार ईसा पूर्व 580 से प्रारम्भ हो गए थे। प्राचीन ग्रीक संस्कृति से लेकर आधुनिक समय तक सौन्दर्य सम्बन्धी पाश्चात्य चिन्तन की एक लम्बी परम्परा रही है। सौन्दर्य के विषय में प्रारम्भिक सूत्र देने का श्रेय प्राचीन यूनानी दार्शनिक पाइयागोरस तथा सुकरात को है। प्रारम्भ में सौन्दर्यशास्त्र का प्रयोग दर्शनशास्त्र की एक शाखा के रूप में प्राप्त होता था। 18वीं शताब्दी में एलंक्डेण्डर वामगार्टन ने सर्वप्रथम 'एस्थेटिक्स' शब्द का प्रयोग किया था। एस्थेटिक्स ग्रीक भाषा का शब्द है, जिसे हिन्दी में सौन्दर्यशास्त्र कहा जाता है। बामगार्टन के अनुसार 'एस्थेटिक्स' ऐन्द्रिय बोध का विज्ञान है, जिसमें संवेदनाओं का विश्लेषण होता है।[13] पाश्चात्य विद्वानों ने सौन्दर्य को लेकर अपने विभिन्न मत प्रस्तुत किए –

प्लेटो तथा प्लोटिनस का मत: प्लेटो ने विश्व के सम्पूर्ण सौन्दर्य को मूलतः ईश्वर का रूप बताते हुए सौन्दर्यानुभूति को एक दिव्य अध्यात्म साधना के समान महत्त्व दिया। उन्होंने सौन्दर्य के चार स्तर माने हैं – शारीरिक सौन्दर्य, मानसिक सौन्दर्य, नैतिक सौन्दर्य और शुद्ध बुद्धि का सौन्दर्य अथवा प्रज्ञात्मक सौन्दर्य। इस प्रज्ञात्मक सौन्दर्य को प्लेटो ने प्रकाश रूप माना है, जो वस्तुतः आत्मचैतन्य का प्रतीक

है।[14] आत्म चेतन का जगत् सौन्दर्यबोध से ऊपर, विकारों से मुक्त, आनन्द से भरा होता है। यही आत्मचैतन्य जो सौन्दर्य रूप है, इसका अनुकरण प्रकृति जगत् या कला जगत् का सौन्दर्य है। उन्होंने कहा है – "सौन्दर्यवान् वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं तथा समाप्त हो जाती हैं परन्तु यह सौन्दर्य ना तो प्रारम्भ ही होता है, ना समाप्त होता है। यह शाश्वत, अपरिवर्तनीय और अविनाशी है। सौन्दर्यवान् वस्तुएँ उसी शाश्वत सौन्दर्य की क्षणिक अभिव्यक्ति है"।[15] प्लेटो ने सौन्दर्य को एक आध्यात्मिक सत्ता स्वीकार करते हुए आत्मवादी सौन्दर्य का सूत्रपात किया। जिसका विकास प्लोटिनस, ऑगस्टीन, मसीही और आधुनिकों में कांट तथा हीगेल आदि दार्शनिकों ने किया।

प्लोटिनस: प्लोटिनस ने भी प्लेटो के समान परमशक्ति के शिवत्व में सौन्दर्य की स्थिति स्वीकार की है। उनके अनुसार सौन्दर्य की भावना मूलतः एक आध्यात्मिक अनुभूति या रहस्यात्मक है। "मानव आत्मा अपने मूल उद्गम- उस परम तत्त्व से मिलने के लिए व्यग्र रहती है जो शिव और सुन्दर का आधारस्रोत है। उस परम सुन्दर के साथ तादात्म्य की यही अभिलाषा सौन्दर्य चेतना का रहस्य है"।[16] वे मूर्ति अथवा वास्तुकला का सौन्दर्य उसके मूल आधार पर न मानकर कलाकार जिस विचार या भावना से किसी पत्थर को सुन्दर रूप देता है अर्थात् मूर्ति बना देता है, उसमें मानते हैं। इससे स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि सौन्दर्य मनुष्य के विचार या भावना में स्थित है, जो आध्यात्मिक तथा रहस्यमय है। उनके अनुसार सुन्दर वही है, जो हमारे अनुराग का विषय है।

मध्ययुगीन पाश्चात्य सौन्दर्यबोध

सन्त ऑगस्टीन: सन्त ऑगस्टीन ने सौन्दर्य को ईश्वरीय तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। उनके अनुसार ईश्वर शुद्ध और चरम सौन्दर्य का प्रतीक है। विश्व ईश्वर की रचना होने के कारण उसका सौन्दर्य ईश्वरीय सौन्दर्य का आभास है। रूप तथा आलोक सौन्दर्य के मूल तत्त्व है। यह आलोक ईश्वर के तेज का ही प्रतिरूप है जो सृष्टि के विधान में क्रम, अन्विति और अनुपात आदि गुणों का सन्निवेश करता है। उन्होंने माना है कि ब्रह्माण्ड के समस्त पदार्थ एक क्रम में रहते हैं यह सब ईश्वर के कारण ही सम्भव हो पाया है। उनके अनुसार "ब्रह्माण्ड क्रम में बढता है क्योंकि ईश्वर क्रम को प्रेम करता है तथा उसका स्रष्टा भी है"।[17] अतः उनके विचार में सौन्दर्य आध्यात्मिक तथा रहस्यमय है।

एक्विनस: ऑगस्टीन के समान एक्विनस ने भी सौन्दर्य को ईश्वरीय तत्त्व माना है। उन्होंने सौन्दर्य की विशेषता के रूप में तीन तत्त्व माने हैं – अखण्डता, समानुपात और दीप्ति।[18] सभी वस्तुएँ सुन्दर तभी होती हैं जब वे सर्वश्रेष्ठ ईश्वर के सदृश हो जाएँ। उन्होंने आनन्द को सौन्दर्य के साथ जोडकर देखा है। उनकी दृष्टि में सुन्दर वस्तु वही है जिसकी अवधारणा आनन्दपूर्वक की जाए।

आधुनिक पाश्चात्य सौन्दर्य: आधुनिक पाश्चात्य जगत् में सौन्दर्य की दार्शनिक व्याख्या करने वाले विद्वानों में मुख्यतः कांट तथा हीगेल का विशेष योगदान रहा है। काण्ट नामक प्रसिद्ध विद्वान् भी नैतिकता और आध्यात्मिकता में विश्वास रखते हैं। वे प्लेटो के समान सौन्दर्य का परिणाम विशुद्धिकरण मानते हैं। वे सामंजस्य-बोध जनित आनन्द को ही सौन्दर्यबोध जनित आनन्द मानते हैं। उनका मानना है कि वस्तु का अवलम्बन करके ही आनन्द व्यक्ति साक्षिक रूप में प्रस्तुत होता है। व्यक्ति साक्षिक होकर भी यह आनन्द सर्वसाक्षिक होता है। इसे न तो इन्द्रिय सुख ही कह सकते हैं तथा न हि नैतिकवृत्ति की धारणा मात्र। इन्द्रिय तथा अतीन्द्रिय का सामंजस्य ही सौन्दर्य है। यहाँ सर्वसाक्षिक कहने का अभिप्राय है कि जो वस्तु एक व्यक्ति को अच्छी लगेगी वह दूसरे को भी अच्छी लगनी चाहिए। अतः वह एकसाक्षिक होते हुए भी सर्वसाक्षिक ही है। इसलिए यह आनन्द भौतिक सुखों से विलक्षण है। "काण्ट का विश्वास है कि नीति और सौन्दर्य दोनों व्यक्तिनिष्ठ होने के साथ ही सर्वनिष्ठ भी होते हैं, क्योंकि जो वस्तु या नीति की बात एक के लिए सुन्दर या उचित है वही दूसरे के लिए भी होती है। भला-बुरा लगना तो इन्द्रिय रुचि पर निर्भर है, किन्तु सौन्दर्यानुभव में एक प्रकार की निश्चिन्तता रहती है कि जो हमें सुन्दर लग रहा है, वही दूसरे को भी सुन्दर लगेगा"।[19] अतः काण्ट का सौन्दर्य व्यक्तिपर तथा सार्वभौमिक है अर्थात् जिन वस्तुओं से सभी को आनन्दानुभूति हो वही सौन्दर्य है। हीगेल ने सौन्दर्य को दिव्य चेतना की ऐन्द्रिय प्रतीति माना है। यह दिव्य चेतना उस परम सत्ता का ही दूसरा रूप है जो सम्पूर्ण सृष्टि की प्रेरक शक्ति है। इसी परम सत्ता की ऐन्द्रिय रूप में जो हमें प्रतीति होती है, वह कला है। कला में प्रकृति की अपेक्षा आत्मतत्त्व की प्रधानता होती है, इसलिए सौन्दर्य वस्तुतः कला का धर्म है। अतः हीगेल ने सौन्दर्य की आत्मवादी व्याख्या प्रस्तुत की है।

निष्कर्ष

सौन्दर्य की इस खोज से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय विद्वानों और पाश्चात्य विद्वानों प्लेटो से लेकर हीगेल तक सौन्दर्य के विषय में जो-जो मत प्रस्तुत किए गए हैं वे कभी उस परम दिव्य शक्ति से आनन्दानुभूति को सौन्दर्य कहते हैं। कभी उन्होंने आध्यात्मिकता एवं कला में भी सौन्दर्य को स्वीकार किया है। वस्तुतः सौन्दर्य आत्मा का ही स्वरूप है।

सभी ने बाह्य तथा रुपगत सौन्दर्य से अधिक, आत्मगत-सौन्दर्य को श्रेष्ठ माना है।

संदर्भ सूची

1. सिंह फतह, भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1967, पृ - 18
2. डॉ. नगेन्द्र, भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 1978, पृ - 35
3. तैत्तिरीय उपनिषद् – 3.6.1
4. महर्षि वाल्मीकि, वाल्मीकि रामायण – 2.54.41
5. डॉ. नगेन्द्र, भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 1978, पृ - 45
6. शर्मा हरदवारी लाल, सौन्दर्यशास्त्र, मधु प्रकाशन, इलाहाबाद – 1979, पृ - 23
7. डॉ. वेदप्रकाश जुनेजा, भारतीय एवं पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र, सिद्धार्थ पब्लिकेशन करनाल, 1978, पृ - 23
8. माघ, शिशुपालवध – 4.17
9. डॉ. नगेन्द्र, भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 1978, पृ - 82
10. वामन, काव्यालंकार सूत्रवृत्ति – 1.1.1-2
11. दण्डी, काव्यादर्श – 2.1
12. पण्डितराज जगन्नाथ, रसगंगाधर – 1.1
13. A history of Aesthetic, Bernard Bosanquet, Page - 183
14. A History of Aesthetic, Gilbert & Khun, Edition – II, Page – 129-130
15. वाजपेयी सुनरित कुमार, पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र का इतिहास, राधा पब्लिशर्स, नई दिल्ली – 2, 1996, पृ - 17
16. डॉ. नगेन्द्र, भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, पृ - 21
17. वाजपेयी सुनरित कुमार, पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र का इतिहास, राधा पब्लिशर्स, नई दिल्ली – 2, 1996, पृ - 60
18. Gilbert & Khun, A history of Aesthetic, Edition–II, Page – 129-130
19. सुरमा दासगुप्ता, सौन्दर्यतत्त्व, पृ - 23